हिन्दी व्यंग्य साहित्य की परम्परा में परसाई का स्थान

डॉ0 अनुपम कुमार वर्मा *

सारांश

ब्रिटिश उपनिवेश से मुक्त भारत की लगभग आधी सदी हरिशंकर परसाई का रचना काल है। परसाई की रचनाएं इस समय विशेष की इतिहास सम्मत साहित्यिक दस्तावेज हैं। परसाई ने जिस समय लेखन की शुरूआत की, उस समय हास्य रचनाओं का बोलबाला था, लेकिन व्यंग्य को जो प्रतिष्ठा आज प्राप्त है निःसन्देह उसमें परसाई का योगदान सर्वोपरि है। परसाई हिन्दी के उन गिने–चुने लेखकों में हैं जिन्होंने स्वातंत्रयोत्तर भारतीय सामाजिक यथार्थ को अपने समग्र गद्य–साहित्य में समाहित करते हुए आम जनता के जीवन संघर्ष को रूपायित किया है। फलस्वरूप आधुनिक हिन्दी व्यंग्य साहित्य के इतिहास में परसाई व्यंग्य विधा के प्रतीक के रूप में स्थापित हो गये। उन्होंने व्यंग्य को सशक्त एवं व्यवस्थित रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। व्यंग्य लेखन के क्षेत्र में ऐसे लेखक कम ही रहे हैं जो प्रखर राजनीतिक चेतना से लैस हों। जाहिर है ऐसा व्यंग्य बहुत बड़ी भीतरी–बाहरी चिन्ताओं, सामाजिक सरोकारों और उससे भी बढ़कर एक गहरी अन्तः करूणा से निकलकर आता है। इस दृष्टि से हिन्दी व्यंग्य साहित्य की परम्परा में परसाई का स्थान सर्वोपरि है। परसाई ही वह रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को फर्श से अर्श तक पहुँचाया है।

सामान्यतः यह कहा जाता है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास व्यंग्य चेतना से मुक्त रहा है। किन्तु हिन्दी में व्यंग्य परम्परा काफी पुरानी है, और हिन्दी व्यंग्य की पृष्ठभूमि के विश्लेषकों ने इसे प्राकृत और अपभ्रंश तक के साहित्य में ढूँढ़ने का प्रयास किया है।[1] 'हिन्दी साहित्य के जन्म के दिनों में उसे नाथों और सिद्धों का साहित्य मिला। इन नाथों और सिद्धों ने जाति–पाति, छुआछूत, ऊँच–नीच और पाखण्ड पर मर्मांतक प्रहार किया। कबीर इसी श्रृंखला की एक कड़ी हैं, वे प्रतिष्ठान के विरोधी थे।[2] लेकिन आधुनिक अर्थों में स्वीकृत विधागत व्यंग्य की परम्परा निश्चिततः भारतेन्दु युग से आरम्भ होती है।

भारतेन्दु युग को आधुनिक हिन्दी साहित्य का नवजागरण काल अथवा पुनर्जागरण काल कहा जाता है। यह आश्चर्य नहीं अपितु सत्य है कि आधुनिक विवेक के पुरोधा भारतेन्दु ने देश की औपनिवेशिक सामन्ती व्यवस्था पर प्रहार के लिए व्यंग्य जैसे सशक्त माध्यम का चुनाव किया। यद्यपि उनके पीछे संस्कृत साहित्य में मृच्छकटिकम् के लेखक 'शुद्रक' और मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में कबीर को छोड़कर कोई परिष्कृत धारधार व्यंग्य की सशक्त परम्परा पीछे नहीं थी फिर भी उन्होंने अपने नाटक, निबन्ध और मुकरियों में व्यंग्य की कला को उत्कर्ष प्रदान किया।[3]

चूँकि व्यंग्य के कारक तत्व के रूप में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवेश में अन्तर्भूत विसंगतियाँ, अन्तर्विरोध आदि होते हैं, इसीलिए हमें भारतेन्दु युग की पृष्ठभूमि का परिज्ञान करना आवश्यक है। राजनैतिक दृष्टि से ब्रिटिश शासन के अधीन शासित भारतीय जन–जीवन को जिस प्रकार शोषित किया गया और जिस तरह यहाँ के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को उपेक्षित अपमानित करते हुए पाश्चात्य मूल्यों एवं आदर्शों को थोपने का प्रयास किया गया उस पर अत्यन्त प्रभावपूर्ण व्यंग्य लेखन इस युग के हिन्दी निबन्धों में मिलता है। वास्तव में भारतेन्दु युगीन व्यंग्य इन्हीं विषम परिस्थितियों के प्रतिक्रिया स्वरूप जन्मा, पनपा और विकसित हुआ।[4]

19वीं शताब्दी के अंतिम चरण में पूरे देश में सांस्कृतिक जागरण की लहर तीव्र हो चुकी थी। देश में एक सशक्त शिक्षित एवं चेतनाशील मध्यवर्ग तैयार हो रहा था जो अंग्रेजी शासन के शोषण दमनचक्र के साथ–साथ उसके कुचक्रों से परिचित होने लगा था तथा राष्ट्र के पिछड़ेपन पर चिन्ता करने लगा था। वह जीवन के सभी क्षेत्रों में परिवर्तन की आवश्यकता को बड़ी शिद्दत से महसूस कर रहा था। भारतेन्दु इसी प्रगतिशील और परिवर्तनकारी चेतना के प्रतिनिधि थे। वे सुधार के द्वारा नवीन युग का निर्माण करना चाहते थे। वास्तव में उन्होंने देश और समाज की तत्कालीन अवस्था का दर्शन मात्र नहीं किया था अपितु समाज के एक अंग के रूप में उसके अभ्युदय के वे समर्थक थे। विदेशी शासन की

* पता– 400–एफ, आजाद नगर, रूस्तमपुर, गोरखपुर (उ0प्र0)

कुरीतियों ने भारतेन्दु के मन को ठेस पहुँचायी और उनके मन में राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो उठी तथा उनकी रचनाओं में व्यंग्य का स्वर प्रमुख हो उठा। उन्होंने अंग्रेजी–स्तोत्र में लिखा– "तुम बुद्ध हो क्यों कि वेद के विरूद्ध हो, और तुम कल्कि हो क्योंकि शत्रु संहारकारी हो। अतएव हे दश विधि रूप धारिन्। हम तुमको नमस्कार करते हैं।..... खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराट रूप अंग्रेज हम तुमको प्रणाम करते हैं।"[5]

भारतेन्दु जी ने केवल गद्य ही नहीं अपितु साहित्य की अन्य विधाओं में भी प्रहारक क्षमतावाली व्यंग्यात्मक रचनाओं का सृजन किया। उनकी हास्य–व्यंग्यात्मक कविताओं, नाटकों के प्रगीतों आदि में पश्चिमी, सभ्यता, विदेशी शासन, सामाजिक अन्धविश्वासों एवं रूढ़ियों आदि पर व्यंग्य करने के लिए अनेक नये प्रयोग किये गये। उनके व्यंग्य गीतों के तीन प्रमुख स्वरूप पैरोडी, स्यापा और गाली मिलते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक विसंगतियों पर व्यंग्य करने की भारतेन्दु की साहित्यिक प्रतिभा ने तत्कालीन बहुत से देशभक्तों का मंडल बन गया। इनमें पं0 बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधाचारण गोस्वामी आदि प्रमुख थे। इस युग के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं से जनता की आँखे खोलने, उसकी उदासीनता तोड़ने और विसंगतियों को उजागर करने का कार्य किया और साथ ही हास्य और व्यंग्य की अनिवार्य योजना द्वारा न केवल हिन्दी की हास्य और व्यंग्य परम्परा को दृढ़ बनाया बल्कि इस युग के साहित्य को सजीवता प्रदान की।

"द्विवेदी युग में भारतेन्दु युग जैसी जिन्दादिली, चुहलबाजी और फक्कड़पन हीं रह गया था, इसलिए इस युग की साहित्यिक विधाओं में हास्य–व्यंग्य पूर्ण सृजन अपेक्षाकृत कम प्राप्त होता है। इस दिशा में जितना कुछ लिखा गया वह द्विवेदी जी के व्यक्तित्व के प्रभाव के कारण अपेक्षाकृत संयत और मर्यादित है।"[6]

द्विवेदी जी के अभिजात वर्गीय स्वभाव एवं संस्कार को साहित्य जगत की उच्छृंखलता भा नहीं सकी। सामाजिक एवं राष्टीय सन्दर्भों में विश्व मानवतावाद जैसे व्यापक आदर्शों की स्थापना के समानान्तर साहित्य जगत में वे नैतिक मर्यादाओं के हिमायती थे। अतः उन्होंने साहित्य एवं साहित्यकारों का नियमन आरम्भ कर दिया।"[7]

इस युग के हास्य और व्यंग्य के विषय रातनैतिक शोषण, सामाजिक कुरीतियों, धर्म, आडम्बर, विदेशीपन का अन्धानुकरण, फैशनपरस्ती, व्यभिचार आदि से सम्बन्धित है। आचार्य द्विवदी ने गम्भीर विषयों पर निबन्ध लिखे हैं, जिनमें व्यंग्योक्तियाँ देखी जा सकती हैं। वे व्यंग्य के महत्व से भली– भाँति परिचित थे। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि, ''प्रहसन और हंसी मजाक के लेखों से मनोरंजन ही नहीं होता है, यदि लेखक विज्ञ और योग्य है तो वह ऐसे लेखों से समाज और साहित्य के दोषों को दूर करने की चेष्टा करता है और उनके द्वारा उनको लाभ पहुँचा सकता है और दण्डनीय व्यक्तियों का शमन भी कर सकता है।"[8]

द्विवेदी युग के प्रमुख निबंधकारों बाल मुकुन्द गुप्त, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, सरदार पूर्ण सिंह आदि के निबन्धों में व्यंग्य की छटा सर्वत्र दिखाई पड़ती है। बाल मुकुन्द गुप्त के सामाजिक, राजनीतिक विषयों पर लिखे निबन्धों में गम्भीर सार्थकता के साथ गहरी चोट करने की क्षमता है। गुलेरी जी के निबंधों में सामाजिक विसंगतियों पर तीखा व्यंग्य किया गया है। अध्यापक पूर्ण सिंह भावनात्मक निबन्धों के प्रर्वतक माने जाते हैं। उनके निबन्धों में भावनात्मक संवेदना के साथ व्यंग्य विनोद की प्रवृति मौजूद है।

द्विवेदी युग के पश्चात शुक्ल युग गति विकास का स्वर्णिम युग स्वीकार किया गया है। इस युग में भाषा शैली एवं कथ्य की दृष्टि से गद्य साहित्य का उत्कृष्ट रूप उपस्थित होता है। परन्तु व्यंग्य निबन्धों में ठहराव जैसी स्थिति दिखाई पड़ती है। कालक्रम की दृष्टि से व्यंग्य निबन्धों के बारे में सुरेशकान्त ने लिखा है कि, "व्यंग्य निबन्धों की जो जीवन्त जिन्दादिली उसके उद्‌गम में दिखाई दी, वह स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही पुनः अपनी स्वाभाविक गति प्राप्त करती है। बीच में पड़ाव में हिन्दी–व्यंग्य कहीं सुबक रहा है, तो कहीं सिर उठाने का असफल प्रयास करता नजर आता है। व्यंग्यात्मक तेवर का पूर्ण पल्लवन एवं उत्थान न तो द्विवेदी–युग में हो सका, न प्रवाह–युग ही व्यंग्यात्मक धार को गति दे पाया। इस तरह भारतेन्दु–युगीन व्यंग्यात्मक तेवर यद्यपि परवर्ती निबन्धों में नहीं पाया गया, किन्तु उसका सम्पूर्ण उन्मूलन भी नहीं हुआ था।"[9]

आचार्य शुक्ल ने विचारात्मक निबन्ध लिखे हैं, जिसमें लेखक और उनकी कृतियों पर देश काल के सन्दर्भ में उच्चकोटि के दृष्टिकोण मौजूद हैं। शुक्ल जी की रसात्मक दृष्टि मनोवैज्ञानिक भाव विश्लेषण प्रधान है। जिसमें विसंगतियों पर उनकी परिहास दृष्टि देखी जा सकती है। "विचारों की गम्भीर घाटियों के बीच–बीच में उतरी हास्य व्यंग्य से ओत–प्रोत उक्तियाँ किसी स्वच्छ शीतल, निरझर के कोमल–मधुर, कल कल स्वर की तरह सुनाई पड़ती हैं।"[10]

आधुनिक हिन्दी व्यंग्य साहित्य के इतिहास में परसाई व्यंग्य विधा के प्रतीक के रूप में स्थापित हैं। उन्होंने व्यंग्य को एक सुव्यवस्थित एवं सशक्त रूप प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। परसाई ने व्यक्तिगत दुखों को जन के दुखों के साथ जोड़कर अपनी रचना का परिमार्जन किया है। परसाई की चेतना सम्पन्न वैज्ञानिक दृष्टि, जीवन को देखने, समझने और उसे प्रकट करने का आधार बनाती हैं। बनी बनायी राहों को छोड़कर परसाई ने प्रगतिशील राह को चुना है। वैयक्तिक संघर्ष, निज की पीड़ा तथा अभावों के खंडहर में जीते हुए भी उनकी व्यंग्य चेतना निजी आक्रोश की शिकार नहीं है। बल्कि वह आत्मकेन्द्रित मूल्यों पर प्रहार करती है। अभिव्यक्ति की कुशलता ने परसाई को एक असाधारण लेखक का रूप दिया। परसाई ने अपनी रचनाधर्मिता को वसुधा के प्रकाशन के साथ ही प्रकट किया। रचनाकार के रूप में उनके दो साथी हैं, एक कबीर और दूसरे मुक्तिबोध। इन दोनों लेखकों का प्रभाव परसाई के व्यंग्य लेखन के ओज और विचारधारा में अनवरत विद्यमान है।

परसाई के लेखन की विषय वस्तु जीवन के सभी पहलुओं तक विस्तारित है। यह व्यापक दृष्टि उनकी चेतना के विस्तार को प्रकट करती है। पारिवारिक जीवन से लेकर सामाजिक एवं राष्ट्रीय जीवन की विसंगतियों को परसाई ने अपनी विशिष्ट शैली में अभिव्यक्त किया है, जिसके बारे में वे कहते हैं कि, "यह सही है कि बहुत कुछ जो व्यंग्य और विनोद के नाम पर लिखा जा रहा है, तीव्र सामाजिक चेतना से हीन है इसमें गुदगुदाने और हँसाने की प्रवृति ही देखी जाती है। कुछ लेखक अर्थ सत्ता और राज सत्ता की मुँह देखी भी करते हैं। कुछ लेखक बहुत अच्छे हैं, मगर ऊँची सरकारी नौकरी पर हैं, वे तो मेरी तरह नौकरी खोने का खतरा नहीं ले सकते। कुछ लेखक निश्चित रूप से और जान बूझकर शोषक वर्ग के समर्थन में लिखते हैं। ये भी व्यंग्य लिखते हैं पर इनकी चोट जनवादी शक्तियों पर होती है, ये धन और सुरक्षा के लिए ऐसा करते हैं। कुछ लेखक हैं जो लोकप्रिय भी हैं, जिनकी भाषा सधी हुई है, खुब पढ़े भी जाते हैं, लेकिन सामाजिक–राजनीतिक रूप से मूर्ख हैं। परन्तु नयी पीढ़ी के लेखकों में मैंने देखा है कि तीव्र सामाजिक चेतना आ रही है। वे लेखन को केवल मनोरंजन नहीं मानते। उनमें वर्ग चेतना भी है।"[11]

परसाई के व्यंग्य में वर्गीय चेतना मूल स्वर है। उनमें जिन विसंगतियों का वर्णन है वे काल्पनिक नहीं, बल्कि जीवन की समीक्षात्मक विसंगतियाँ हैं। उनके पात्र गहन अध्ययन के परिणाम स्वरूप जन्म लेते हैं और विराट अनुभूति, सहज अभिव्यक्ति में परिवर्तित होती रहती है। परसाई की व्यंग्य रचनाओं में विचार के साथ–साथ लालित्य का गहरा समावेश है। "परसाई का व्यंग्य–सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन के खरेपन का व्यंग्य है। मौजूदा यथार्थ के खुरदरापन परसाई की निजी विशेषता एवं साहित्यिक उपलब्धि है। वह पाठकों को चुभता ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानवीय करूणा की धार भी प्रभावित करता है। इस करूणा से ओत–प्रोत पाठक सृजनात्मक चिंतन की ओर उन्मुख होता है। नूतन दिशाकाश की तलाश की ललक उसमें जागती है। यह नूतन ललक इस तलाश–दृष्टि का निर्माण परसाई के व्यंग्य की खूबी है, पहचान है।"[12]

परसाई ने व्यंग्य को सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में ही लिखा है। घर फूँक तमाशा देखने का साहस और जिंदादिली उन्हें जनता के सच्चे लेखक के रूप में स्थापित करती है। अपनी व्यंग्य रचनाओं को वे सामाजिक यथार्थ पर की गयी वैज्ञानिक टिप्पणियों के रूप में स्वीकार करते हैं। "तात्कालिक संदर्भ से उठे ये व्यंग्य अपने पूर्ण रूप से साहित्य, धर्म, संस्कृति, परम्परा, दर्शन आदि की विसंगतियों पर तार्किक और वैज्ञानिक टिप्पणियाँ है।"[13]

परसाई ने समाज की जिस अभिव्यंजना को अभिव्यक्ति दी वे सभी उक्तियाँ, कहावतें जीवन की संस्कृति के गूढ़ जटिल स्वरूप को व्यंजित करने वाली सूत्र कथनों के रूप में प्रकट हुई हैं, जिनकी

कलात्मकता अद्‌भूत है। परसाई की यही विशेषता उन्हें व्यंग्य लेखन का सबसे विशिष्ट लेखक बनाती है।

व्यंग्य की चर्चा फैंटेसी के बिना पूरी नहीं हो सकती। परसाई ने अपने लेखन में छोटी किन्तु सृजनशील फैंटेसी का प्रयोग किया है। "रानी नागफनी की कहानी" रिटायर्ड भगवान की कथा, अकाल उत्सव, निठल्ले की डायरी, निठल्लेपन का दर्शन, युग की पीड़ा, राष्ट्र का नया बोध जैसी रचनाओं में ऐसी ही फैंटसी के दर्शन होते हैं।

प्रतीक, विम्ब, विधान और पौराणिक कथाओं का जिस नवीनता के साथ परसाई ने प्रयोग किया है वह अन्यत्र दुलर्भ है। "हे भारद्वाज इस समय वानरों ने बड़े–बड़े विचित्र चरित्र किए। एक वानर अपने घर में तलवार से स्वयं ही शरीर पर घाव बना रहा था। उसकी स्त्री घबराकर बोली–नाथ यह क्या कर रहे हो? वानर ने कहा–प्रिये, शरीर में घाव बना रहा हूँ। आजकल घाव गिनकर पद दिए जा रहे हैं। मैं राम–रावण संग्राम के समय तो भागकर वन में छिप गया था। फिर जब राम की विजयी सेना लौटी, तो मैं उसमें शामिल हो गया। मेरी तरह अनेक वानर वन से निकलकर उस विजयी सेना में मिल गए। हमारे तन पर एक भी घाव नहीं था, इसलिए हमें सामान्य परिचारक का पद भी नहीं मिलता। अब हम स्वयं घाव बना रहे हैं। स्त्री ने शंका की–परन्तु प्राणनाथ, क्या कार्यालय वाले यह नहीं समझेंगे कि ये घाव राम–रावण संग्राम के नहीं है? वानर हँस के बोला–प्रिय, तुम बहुत भोली हो। वहाँ भी धाँधली चलती है। मुझे बचपन से ही विद्या से बड़ा प्रेम है। मैं ऋषियों के आश्रम के आसपास ही मँडराया करता था। मैं विद्यार्थियों की चोटी खींचकर भागता था, हब्य सामग्री झपट लेता था। एक बार ऋषि का कंमडल ही ले भागा था। इसी से तुम मेरे विद्या–प्रेम का अनुमान कर सकती हो। मैं तो कुलपति ही बनूँगा।"[14]

परसाई की शैली की अपनी निजता है। 'सुनो भाई साधो', 'कबिरा खड़ा बाजार में', 'और अन्त में', 'उलझी–उलझी', 'कहत कबीर', 'माटी कहें कुम्हार से,' 'तुलसीदास चंदन घीसे', जैसे लोकप्रिय कॉलम उनकी निजता को प्रकट करते हैं। उनकी रचनाओं में कहानी, रेखाचित्र, संस्मरण आदि विधाओं का समावेश है, जिसे समीक्षकों ने अपने–अपने ढ़ंग से रेखांकित किया है। हिन्दी व्यंग्य–लेखन के इतिहास और समकालीन व्यंग्य लेखकों में परसाई उसी स्थान के अधिकारी हैं जिसे आचार्य शुक्ल ने भक्ति काव्य में सूर और तुलसी को प्रदान किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी साहित्य में व्यंग्य – डॉ उषा शर्मा पृ0सं0–81
2. हिन्दी साहित्य में व्यंग्य का विकास–आभाभट्ट, पृ0सं0–151
3. भारतीय विवेक के स्वप्नः संदर्भ हरिशंकर परसाई– शंभुनाथ, आलोचना, अंक (जुलाई–सितम्बर, 1988), पृ0सं0–41
4. हिन्दी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार–सुरेशकान्त, पृ0सं0–82
5. हिन्दी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार–सुरेशकान्त, पृ0सं0–85
6. हरिशंकर परसाई के व्यंग्यों में वर्ग चेतना, आभाभट्ट, पृ0सं0–153
7. हिन्दी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार–सुरेशकान्त, पृ0सं0–95
8. वाग्विलास, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पृ0सं0–33
9. हिन्दी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार, पृ0सं0–105
10. "हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास–गणपति चन्द्र गुप्त, पृ0सं0–852
11. आँखन देखी, सम्पादक कमला प्रसाद, साक्षात्कार, पृ0सं0–38
12. हिन्दी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार–सुरेशकान्त, पृ0सं0–187
13. हिन्दी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार–सुरेशकान्त, पृ0सं0–188
14. जैसे उनके दिन फिरे, लंका विजय के बाद, परसाई, पृ0सं0–52–53

●